International Journal of Academic Research and Development
ISSN: 2455-4197, Impact Factor: RJIF 5.22
www.academicsjournal.com
Volume 2; Issue 3; May 2017; Page No. 381-382

ध्वनिकार के पूर्ववर्ती आचार्य : भामह

डॉ0 पूनम राय

प्रवक्ता, सेंट जॉन्स अकादमी, करछना, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत।

सारांश

साहित्य–शास्त्र में जितनी कृतियाँ उपलब्ध हैं उनमें भरतकृत नाट्यशास्त्र प्राचीनतम है। नाम्ना यद्यपि यह नाट्यशास्त्र सम्बन्धी विषयों का ही ग्रन्थ प्रतीत होता है, किन्तु यह विविध कलाओं का आकार ग्रन्थ है। इतिहास में इस ग्रन्थ को इतना महत्व प्राप्त हुआ कि इसकी महिमा के प्रकाश में सजातीय ग्रन्थों की खद्योतमाला ऐसी निष्प्रभ हो गई कि काल की गति उन्हें सर्वथा विस्मृति के गर्त में धकेल गयी।

शब्द कुंजी : साहित्य–शास्त्र, नाट्यशास्त्र, भामह।

प्रस्तावना

भामह के परिचय के विषय में हमें काव्यालंकार में अधोलिखित श्लोक मिलता है–

अवलोक्य मतानि सत्कवीनामवगम्य स्वधिया च काव्यलक्ष्म्।
सुजनावगमाय भामहेन ग्रथितं रक्रिलगोमिसुनुनेदम्।।

अपना नाम भामह और अपने पिता का नाम 'रक्रिलगोमी' बताया है। विद्वान उन्हें काश्मीरी मानते आये हैं। उनके समय को लेकर पण्डितों के बीच अनेक मत हैं। इत्सिंग ने अपने बौद्ध धर्म सम्बन्धी अभिलेखों में काशिका का वर्णन किया है और यह भी बतलाया है कि जमादित्य की मृत्यु 30 वर्ष पूर्व हो चुकी थी। इत्सिंग ने अपनी पुस्तक 691 ई0 में लिखी। अतः जयादित्य की मृत्यु 661–62 में हुई होगी। काशिका ने अष्टाध्यायी 1, 3, 23 पर भारवि कृत किरातार्जुनीय का उल्लेख किया है – संशय्य कर्णादिषु तिष्ठते यः यह उल्लेख उपरोक्त तिथि का समर्थक है। न्यासकार का कथन है कि काशिका की अनेक प्रतिलिपियाँ की गई थीं उनमें तत्कालीन लिपिकारों ने बहुत से ऐसे उदाहरण जोड़ दिये जो मूल काशिका में नहीं थे – अष्टाध्यायी 6, 3, 79 पर मुद्रित काशिका ने तीन उदाहरण दिये हैं– सकलम् सुमुहुर्तम् और ससंग्रहम। इस पर न्यास (पृ0 469) का कथन है–'ससंग्रहामित्येतदुदाहरणं प्रमादादिदा–नींतनैः लेखकैर्तिखितम्'। यहाँ इदानींतनैः शब्द महत्वपूर्ण है।

कम से कम एक या दो पीढ़ियों का अन्तर अवश्य होना चाहिए। अतः न्यास की तिथि 700 ई0 के पूर्व नहीं हो सकती। न्यासकार जयादित्य का समकालीन नहीं हो सकता। भामह ने न्यास का उल्लेख किया है अतः उसे 700 के पश्चात् तथा 750 के पूर्व रखना होगा।

भामह ने दिङनाग का लक्षण उद्धृत किया है और उसकी व्याख्या भी की है। उत्तरार्द्ध में कल्पना शब्द का अभिप्राय प्रकट करते हुए उसने कहा है – वस्तु के साथ नाम, जाति आदि का सम्मिश्रण। दिङ्नाग ने प्रत्यक्ष का लक्षण 'कल्पनापोढम्' किया था। धर्मकीर्त्ति ने उसके साथ अभ्रान्तं जोड़ दिया। ततोऽर्थात्' में प्रत्यक्ष के वसुबन्धु कृत लक्षण का उल्लेख है। वाचस्पति सरीखे प्रौढ़ और प्राचीन दार्शनिकों ने भी भामह द्वारा प्रस्तुत लक्षणों को वस्तुतः दिङ्नाग तथा वसुबन्धु (ततोऽर्थात्) का माना है। दिङ्नाग की दोनों रचनायें 557–559 ई0 के मध्य चीनी भाषा में अनुदित हुई। अतः दिङ्नाग 550 ई0 के पूर्ववर्ती है वे वसुबन्धु के शिष्य थे, इस आधार पर डॉ0 विद्याभूषण ने उनकी पूर्वसीमा 480 ई0, स्थिर की है। डॉ0 रैण्डल (इण्डियन लौजिक इन अर्ली स्कूल्स, पृ0 31–32) का कथन है कि वसुबन्धु की तिथि अनिश्चित है और उनके शिष्य होने के कारण दिङ्नाग की तिथि भी सन्दिग्ध है। सम्भवतया वे 420–500 ई0 के मध्य हुए। अतः भामह द्वारा दिङ्नाग का उल्लेख उसके तिथि निर्णय में विशेष सहायक नहीं है। भामह का तर्कशास्त्र पर कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। संस्कृत, तिब्बत अथवा चीनी भाषा में इस प्रकार के ग्रन्थ का कहीं उल्लेख या उद्धरण भी नहीं मिलता। धर्मकीर्त्ति बौद्ध परम्परा के प्रमुख तार्किक है। उनकी तुलना केवल दिङ्नाग के साथ हो सकती है। प्रो0 वटुकनाथ ने भामह की प्रस्तावना में अपनी निष्पक्षता प्रदर्शित करने के लिए यहाँ तक कह दिया है कि हो सकता है, धर्मकीर्ति भामह के ऋणी हों।

डा0 विद्याभूषण के अनुसार (हिस्ट्री आफ मिडविल इण्डियन लौजिक पृ0 103 और हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लौजिक पृ0 303–305) धर्मकीर्ति 635–650 ई0 के लगभग हुए। यह उल्लेखनीय है कि ह्वेनसांग भारत में सं0 629–645 ई0 तक रहे, फिर भी उन्होंने कहीं पर धर्मकीर्त्ति का उल्लेख नहीं किया। इसके विपरीत ईत्सिंग ने 671 से लेकर 695 ई0 तक भारत की यात्रा की तथा 691 ई0 में अपना ग्रन्थ रचा। उसमें इस बात का वर्णन है कि धर्मकीर्त्ति ने तर्कशास्त्र का किस प्रकार परिष्कार किया। इत्सिंग ने बौद्ध आचार्यों को तीन युगों में विभक्त किया है – नागार्जुन, देव तथा अश्वघोष को प्राचीन युग में, वसुबन्धु, असंग, संघभद्र, और भवविवेक को मध्य युग में तथा जिन धर्मपाल, धर्मकीर्त्ति एवं शीलभद्र आदि को उत्तर युग में। धर्मकीर्त्ति धर्मपाल के शिष्य थे, अतः उनका समय 650 अथवा 660 मानना चाहिए। भामह में धर्मकीर्त्ति से उद्धरण लिये हैं। अन्य प्रकाणों के आधार पर यह स्थापित किया जा चुका है कि भामह 700 ई0 के पूर्ववर्ती नहीं है। अतएव उनका समय अधिकांश विद्वानों द्वारा प्रायः विक्रम की षष्ठी शताब्दी का मध्यकाल माना जाता है। भरत के बाद रस–मीमांसा के क्षेत्र में शताब्दियों तक कोई महत्वपूर्ण कार्य नहीं हो सका। आगे चलकर अलंकार–वादी धारा का प्राबल्य हुआ और रस का वेग अवरूद्ध हो गया। भरत से लेकर ध्वनि सम्प्रदाय के उदय तक पाँच नाम महत्वपूर्ण है – भामह, दण्डी, उद्भट, वामन एवं रूद्रट। इनमें प्रथम तीन अलंकारवादी तथा वामन एवं रूद्रट की स्थिति रस एवं अलंकार दोनों के मध्य की है। यद्यपि पाँचों आचार्यों की मान्यतायें समान नहीं है, फिर भी रस के प्रति इनके दृष्टिकोण में साम्य दिखाई पड़ता है।

भरत के नाट्यशास्त्र के बाद भामह के 'काव्यालंकार' का महत्वपूर्ण स्थान है। रस–सिद्धान्त के प्रति भामह का दृष्टिकोण एक विरोधी विचार के जैसा है। ये रस–सिद्धान्त के पोषक न होकर उसके विरोधी है। इनके अनुसार उत्तम काव्य के लिए अलंकार एक आवश्यक तत्व है। उन्होंने काव्य में रस को गौण स्थान दिया।

इन्होंने रस की सीमा को संकीर्ण कर उसे कतिपय अलंकारों में अन्तर्भूत कर दिया है। ऐसे अलंकारों में प्रेयस, रसवत् एवं उर्जस्वी है।

रसवद्दर्शितस्पष्ट श्रृंगारादिरसं यथा।
देवी समागमद्धर्ममस्कश्ष्यि तिरोहिता।।

अर्थात् रसवत् अलंकार वहाँ होता है जहाँ श्रृंगारादि स्पष्ट रूप से दिखाये गये हों। फिर भी महाकाव्य के विवेचन में भामह ने रस के महत्व को स्वीकार किया है। महाकाव्य के लिए वे समस्त रसों के विधान की अनिवार्यता सिद्ध करते हैं। जिस प्रकार महाकाव्य के लिए सर्गबद्धता, शब्द एवं अर्थ सौष्ठव, पंचसंधियों का गठन तथा अलंकारों का सुन्दर प्रयोग आवश्यक है उसी प्रकार सकल रसों का समावेश भी अनिवार्य है।

युक्तं लोकस्वभावेन रसैश्च सकलैः पृथक।

इतना होने पर भी भामह का दृष्टिकोण रसवादी नहीं कहा जा सकता। वे भरत–विरोधी आचार्य हैं तथा विभाव को ही रस मानते हैं। इन्होंने रसवत अलंकार के वर्णन में जो उदाहरण प्रस्तुत किया है उससे यही सिद्ध हाता है कि वे विभाव को ही रस स्वीकार करते हैं। इस प्रकार अलंकारों के अन्तर्गत रस का समावेश करने के कारण भामह अलंकारवादी आचार्य ही कहे जा सकते हैं। इस सम्बन्ध में डा0 राम लाल सिंह के कथन में औचित्य दिखाई पड़ता है। भामह ने अलंकार के माध्यम से काव्य के कल्पना पक्ष पर सबसे अधिक बल दिया, इससे भाव से सम्बन्ध रखने वाले–तत्व की उपेक्षा उससे हो गई।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. किरार्ताजुनीय, भारवि; चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस, 1952।
2. काव्यालंकार, श्री रामदेव शुक्ल, चौखम्बा–विद्याभवन, वाराणसी; 1967।
3. रस–सिद्धान्त, डा0 नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली; तृतीय संस्करण; 1974।
4. रस–सिद्धान्त स्वरूप विश्लेषण, आनन्द प्रकाश दीक्षित, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली; 1972।
5. रस–गंगाधर, चिन्मयी माहेश्वरी, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर–4; 1974।
6. रस–गंगाधर, पण्डितराज जगन्नाथ, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी; 1987।
7. काव्य–दर्पण, विद्या वाचस्पति पंडित रामदहिन मिश्र, ग्रन्थमाला कार्यालय, पटना; 1973।
8. काव्यालंकार, भामह, बाल मनोरमा सीरीज, मद्रासा; 1956।
9. भारतीय काव्यशास्त्र के प्रतिनिधि सिद्धान्त, प्रो0 राजवंश सहाय 'हीरा', चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी; 1967।
10. काव्यालंकार सार–संग्रह एवं लघुवृत्ति की व्याख्या, डा0 राममूर्ति त्रिपाठी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग; 1966।
11. काव्यालंकार, श्री रामदेव शुक्ल, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी; 1967।
12. श्रृंगाररस भावना और विश्लेषण, रमाशंकर जैतली, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर; 1972।
13. श्रीवाग्भटाचार्य विरचितः रसरत्न समुच्चयः, पं0 श्री धर्मानन्द शर्मणा, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, वाराणसी, पटना; 1962।